SHODH SAMAGAM
ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भारतीय दर्शन में अयथार्थ ज्ञान की समस्याः एक विश्लेषण

प्रियदर्शी सौरभ, दर्शनशास्त्र विभाग,
जगदम कॉलेज, छपरा, सारण, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
प्रियदर्शी सौरभ, दर्शनशास्त्र विभाग,
जगदम कॉलेज, छपरा, सारण, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 19/09/2022
Revised on : -----
Accepted on : 26/09/2022
Plagiarism : 01% on 19/09/2022

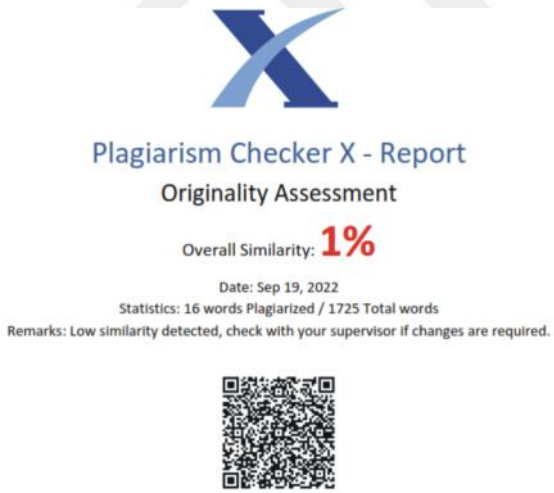

शोध सार

अयथार्थ ज्ञान की समस्या भारतीय दर्शन की एक प्रमुख समस्या रही है। ख्यातिवाद भारतीय दर्शन में मिथ्याज्ञान के कारण और स्वरूप के निर्धारण के लिए प्रस्तुत किया गया सिद्धान्त है। ख्याति का शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान' है लेकिन यह हमारे 'अज्ञान' अर्थात् 'भ्रम–ज्ञान' के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अतः इस 'भ्रम–ज्ञान' के कारण का ज्ञान होना आवश्यक है जिसके निवारण के लिए 'ख्यातिवाद' सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। भारतीय दर्शन में ख्याति के अन्तर्गत कई विचार प्रस्तुत किए गए हैं। प्रस्तुत शोध–आलेख का उद्देश्य इन विचारों की सम्यक विवेचना प्रस्तुत करना है।

मुख्य शब्द

अयथार्थ ज्ञान, भ्रम–ज्ञान, ख्यातिपाद, अज्ञान.

मानवीय प्रयोजन एवं पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। परन्तु हमारा ज्ञान यथार्थ है, इसका निश्चय करना स्वयं में एक द्विमुखी पक्रिया हैः 1. हमारा ज्ञान यथार्थ कैसे है? 2. यह अयथार्थ ज्ञान से कैसे भिन्न है? स्पष्ट है कि यथार्थ ज्ञान के निर्धारण के क्रम में हमें यह भी जानना आवश्यक है कि अयथार्थ ज्ञान क्या है? अयथार्थ ज्ञान से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों की विवेचना ख्यातिवाद के अंतर्गत की जाती है।

ख्याति का शाब्दिक अर्थ होता हैः 'ज्ञान', किन्तु भारतीय दर्शन में यह भ्रमात्मक ज्ञान के रूप में आरूढ़ हो गया है। भारतीय दर्शन में भ्रम के स्वरूप व उसकी स्थिति को लेकर विवाद है। इस विवाद के क्रम में वस्तु के दृश्य स्वरूप, उसके वास्तविक स्वरूप तथा उस वस्तु के इन दोनों स्वरूपों के अंर्तसंबंध की व्याख्या की जाती है। भारतीय दर्शन में भ्रम के स्वरूप और उसकी स्थिति के संबंध में विवाद का मुख्य कारण विभिन्न दर्शनों की अपनी–अपनी पृथक मान्यताएँ हैं। भारतीय दर्शन में

ख्याति के अंतर्गत आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति तथा अनिर्वचनीय ख्याति सम्मिलित है।[1]

''आत्मख्यातिसत्यख्यातिख्यातिः ख्यातिरन्यथा
तथाऽनिर्वचनख्यातिरित्येतत् ख्यातिपचकम्।।''

प्रस्तुत अध्ययन

भारतीय दर्शन में इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ख्याति विषयक् सिद्धांत भी यत्र–तत्र देखने को मिलते हैं। जिनमें प्रमुख हैंः सत्ख्याति, विपरीतख्याति, सदासद्ख्याति तथा अलौकिकार्थ ख्याति।

अख्यातिवाद

इस मत के समर्थक प्रभाकर मीमांसक हैं। चूँकि प्रभाकर स्वतः प्रामाण्यवाद तथा स्वतः अप्रामाण्यवाद में विश्वास करते हैं, अतः उनके अनुसार प्रत्येक ज्ञान सत्य होता है, कोई ज्ञान असत्य नहीं होता। यहाँ तक कि जिसे भ्रम की संज्ञा दी जाती है, वह ज्ञान भी सर्वथा असत्य या अयथार्थ नहीं होता है (यथार्थ सर्ववेवेह विज्ञानमिति सिद्धये)। प्रभाकर के अनुसार तथाकथित भ्रम एक ज्ञान नहीं बल्कि, यह दो ज्ञानों का योग होता है। इसमें एक प्रत्यक्ष ज्ञान है, दूसरा स्मरण ज्ञान। भ्रम में प्रत्यक्षगम्य रस्सी को पूर्वकाल में देखी गई वस्तु सर्प की स्मृति के साथ समन्वित कर देते हैं। इस प्रकार प्रभाकर मीमांसा में भ्रम दो ज्ञानों के बीच भेद न कर पाने के अभाव के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रभाकर मीमांसा में भ्रम ज्ञान का अभाव है। यह एक ज्ञान या समग्र ज्ञान या मौलिक ज्ञान नहीं बल्कि दो ज्ञानों का योग है।

कमास्लि भट्ट तथा सुवारित मिश्र ने प्रभाकर के इस मत की आलोचना करते हुए कहा है कि प्रभाकर का अख्यातिवाद मीमांसा के मूल सिद्धान्त से असंगत है। शबरभाष्य में भ्रम को एक अयथार्थ ज्ञान माना गया है जिस अयथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति दुष्ट कारणों या कारण दोष से होती है–*''यत्र च दुष्टम् करण यत्र च मिथयेति प्रत्यय स एवं समीचीन प्रत्यय नान्य* जयन्त भट्ट मीमांसकों के इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि भ्रम स्मृति के कारण होता है। इनका मानना है कि भ्रम स्मृति के कारण न होकर प्रत्यक्ष के कारण होता है।

विपरीत ख्यातिवाद

यह कुमारिल भट्ट का सिद्धांत है। कुमारिल स्वतः प्रामाण्यवाद एवं परतः अप्रामाण्यवाद को स्वीकार करते हैं। अपने इसी ज्ञानमीमांसीय मान्यताओं के अनुरूप उन्होंने भ्रम की व्याख्या की है। प्रभाकर के विपरीत कुमारिल का मानना है कि भ्रम एक ज्ञान है और यह अन्यथा या मिथ्या ज्ञान है। जब हम सीपी को रजत के रूप में देखते हैं और यह कहते हैं कि यह रजत हैं तो यहाँ 'उद्देश्य' और 'विधेय' दोनों सत् होता है। संसार में दोनों की सत्ता होती है। भ्रम इस बात को लेकर होता है कि दोनों सत् किन्तु पृथक–पृथक वस्तुओं के उद्देश्य और विधेय को जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार भ्रम ज्ञान के विशय को लेकर नहीं बल्कि उसके संसर्ग को लेकर होता है। भ्रम अज्ञान न होकर एक प्रकार का ज्ञान ही हैं किन्तु बाह्य कारणों अथवा दोषयुक्त हेतु से उत्पन्न होने के कारण यह ज्ञान अप्रमाण्य अथवा दोषयुक्त होता है।

''अर्थान्यथात्वहेतूत्थ दोशज्ञानदयोद्यते।''

भट्टमीमांसक एवं प्रभाकर मीमांसक दोनों ही मीमांसा मत के आचार्य हैं। दोनों वस्तुवाद को दृढ़ता से स्वीकार करते हैं तथा दोनों स्वतः प्रमाण्यवाद एवं परतः अप्रामाण्यवाद का समर्थन करते हैं, फिर भी दोनों आचार्यों के विचारों में प्रर्याप्त भिन्नता भी हैं। प्रभाकर भ्रम को ज्ञान का अभाव मानते हैं, जबकि भाट्ट के अनुसार भ्रम अयथार्थ ज्ञान है। प्रभाकर के अनुसार ज्ञान दो आंशिक सत्य ज्ञान का योग है, यह पूर्णतः असत्य ज्ञान नहीं है। इसके विपरीत भाट्ट मीमांसक भ्रम को एक संपूर्ण मानते हैं, जो दोषपूर्ण संसर्ग के कारण भ्रमात्मक हो जाता है।

भाट्टय मीमांसकों के भ्रम संबंधी विचार सर्वथा उपयुक्त नही है। भाट्टों के विपरीत ख्यातिवाद की संगति उनके यथार्थवाद से नहीं है। उनके अतिरिक्त ज्ञान को आत्मनिष्ठ या ज्ञाता सापेक्ष मान कर भी भाट्ट मीमांसक अपने यथार्थवाद का परित्याग करते हैं।[2]

अन्यथा ख्यातिवाद

यह नैय्यायिकों का मत है। न्याय दर्शन में परतः प्रामाण्यवाद एवं परतः अप्रामाण्यवाद को स्वीकार किया गया है। अपने ज्ञानसमीमांसीय यथार्थवाद की तार्किक अपेक्षाओं के अनुरूप ही नैय्यायिकों ने अन्यथाख्यातिवाद का प्रतिपादन किया है। इस मत के अनुसार भ्रम में प्रस्तुत वस्तु का अन्यत्र स्थित अन्य वस्तु के रूप में ज्ञान होता है। यहाँ अन्यत्र का अर्थ हैः 1. अन्यत्र, 2. अन्य रूप में। दृश्यमान वस्तु (शुक्ति) को अन्यत्र स्थित, अन्य वस्तु (रजत) के रूप में प्रत्यक्ष होता है। शुक्ति का रजत के रूप में अन्यथाग्रहण होता है। शुक्ति व रजत दोनों की अलग–अलग सत्ता है केवल इनका शुक्ति रजत रूप, संबंध रूप असत् है। नैय्यायिक वस्तुवाद की रक्षा करने के लिए भ्रम में रजत के वास्तविक प्रत्यक्ष की कल्पना करते हैं और इसके लिए ज्ञानलक्षण प्रत्यक्ष नामक असाधारण प्रत्यक्ष का सहारा लेते हैं। भ्रम कैसे होता है? इस प्रश्न की व्याख्या करते हुए नैय्यायिक कहते हैं कि ज्ञान में प्रमाण्य और अप्रमाण्य परत उत्पन्न होता है। शुक्ति का 'शुक्ति रूप ज्ञान' यथार्थ ज्ञान हैं, शुक्ति का 'रजत रूप ज्ञान' अयथार्थ ज्ञान है। शुक्ति का यह बोध यथार्थ होगा अथवा अयथार्थ न्यायमतानुसार यह बाह्य कारणों यथा यथेष्ट प्रकाश आदिद्ध पर निर्भर करता है। यदि बाह्य कारण दोषरहित है तो ज्ञान यथार्थ होगा तथा यदि बाह्य कारण दोषपूर्ण है, तो ज्ञान अयथार्थ अथवा भ्रमात्मक होगा।

अनिर्वचनीय ख्यातिवाद

अद्वैत वेदांती शंकराचार्य का भ्रम संबंधी मत अनिर्वचनीय ख्यातिवाद है। इस मत के अनुसार भ्रम की स्थिति में जिस वस्तु का ज्ञान होता है, वह चतुष्कोटिक से ऊपर होने के कारण सदसिद्ध लक्षण या अनिर्वचनीय होता है। अर्थात् भ्रम का सत् या असत् रूप में वर्णन नहीं किया जा सकता। शंकर के अनुसार भ्रम अविद्या है। अविद्या और इन्द्रियादि दोषों के कारण ही रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है। आचार्य शंकर के अनुसार आवरण शक्ति के द्वारा अविद्या वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ढक लेती है और विक्षेप शक्ति के द्वारा अविद्या उस वस्तु पर किसी अन्य वस्तु को आरोपित कर देती है। परिणामतः प्रस्तुत वस्तु अन्य वस्तु के रूप में दृष्टिगत होती है। यही अध्यास है अध्यास की स्थिति में अध्यस्त का अधिष्ठान पर आरोपण हो जाता है। शंकर के अनुसार रज्जू के सर्प रूप ज्ञान में रज्जु अधिष्ठात है तथा सर्प अध्यस्त। इस भ्रांत ज्ञान में सर्प सत् नहीं है क्योंकि कालान्तर में व्यवहार के स्तर पर इसका खंडन हो जाता है। पुनः इसे सत् असत् भी नहीं कहा जा सकता (जैनियों के समान) क्योंकि ऐसा मानने पर आत्मविरोध की स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार भ्रम का विषय सत्, असत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है। यहाँ उल्लेखनीय है कि रज्जु का सर्प रूप में ज्ञान केवल भ्रम नहीं है, बल्कि रज्जु को रज्जु के रूप में सत् समझना ही भ्रम है। जहाँ रज्जु में सर्प का ज्ञान व्यक्तिगत भ्रम है, वही रज्जु के रज्जु के रूप में सत् समझना समष्टिगत भ्रम है। शंकर समस्त जगत् को ही भ्रम के रूप में स्वीकार करते हैं, जो माया या अविद्याकृत है। अज्ञान के कारण निराकार अद्वैत ब्रह्म का जगत् के रूप में अध्यास होता है। आवतरण शक्ति के द्वारा माया ब्रह्म के यथार्थ सच्चिदानन्द स्वरूप को आवृत करती है तथा विक्षेप के द्वारा साकार जगत् का अध्याय उस निराकार ब्रह्म में होता है।

रामानुज ने शंकर के अनिर्वचनीय ख्यातिवाद् की आलोचना की है। उनके अनुसार भ्रम का अनिर्वचनीय कहना भी एक प्रकार से इसका विवेचन करना है। अतः अनिर्वचनीयता की अवधारणा विरोधाभासी है। रामानुज के अनुसार

[3]

असत्ख्यातिवाद

यह माध्यमिक शून्यवादियों का भ्रम विषयक सिद्धान्त है। इनके अनुसार शून्य ही परम सत् है, इसके अतिरिक्त सभी असत् है। यहाँ ज्ञाता ज्ञेय तथा ज्ञान तीनों को असत् माना गया है। यहाँ असत् का आशय आस्तित्वविहीनता नहीं है, बल्कि कोई निश्चित स्वतंत्र एवं निरपेक्ष आस्तित्व के नहीं होने से है। ये स्वरूपत एवं स्वाभावत् शून्य है। अतः असत् है। भ्रम में हमें असत् वस्तु का ही ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए इनका ख्याति संबंधी सिद्धान्त असत्ख्यातिवाद कहलाता है।

सत्ख्यातिवाद

ख्यातिपचक में सत्ख्यातिवाद का उल्लेख नहीं मिलता। कहीं–कहीं ख्यातिपचक में उल्लेखित आत्मख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति तथा अनिर्वचनीय–ख्याति को सम्मिलित रूप से 'सत्ख्यातिवाद' के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इन चारों मतों में बोध की विषय–वस्तु (इदम् तथा रजतम्) को सत्य माना जाता है। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के मत को 'सत्ख्यातिवाद' के नाम से जाना जाता है। रामानुज के अनुसार यह समस्त जगत् सत् है, क्योंकि यह ब्रह्म का वास्तविक परिणाम है (ब्रह्मपरिणामवाद)। कोई भी ज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता, ज्ञान और ज्ञान के विषय सदैव ही सत् होते हैं। सीपी और रजत् के ज्ञान के उदाहरण में भी यह सत् लागू होती है। रामानुजाचार्य के 'पंचीकरण सिद्धांत' के अनुसार सीपी और रजत् में कई अंशों में समानता है परन्तु सीपी में अपना ही अंश अधिक होने के कारण लोक व्यवहार में उसे सीपी कहा जाता है। अतः यदि सीपी में रजत् की प्रतीति होती है, तो वह गलत नहीं है, क्योंकि सीपी में रजत का अंश भी विद्यमान है। यहाँ सीपी और रजत का भेद तात्विक न होकर व्यावहारिक है। इस प्रकार सत्ख्यातिवाद के अनुसार भ्रम अपूर्ण किन्तु सत् है।[4]

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन के विभिन्न संप्रदायों में उपर्युक्त वर्णित ख्याति सिद्धांतों की विवेचना के बाद निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अयथार्थ ज्ञान की समस्या भारतीय दर्शन की एक प्रमुख समस्या रही है। प्रायः सभी दार्शनिक संप्रदायों ने इस समस्या पर विचार किया है किन्तु इस चिंतन के क्रम में वे पूर्वमान्यताओं से ग्रसित प्रतीत होते हैं। सभी ने अपनी–अपनी दार्शनिक मान्यताओं के आलोक में ही इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास किया है। अंततः इनका उद्देश्य अपने दर्शन की संगतता को बरकरार रखना हो जाता है न कि अयथार्थ ज्ञान की समस्या के तार्किक निष्पक्ष समाधान का।

संदर्भ सूची

1. चटर्जी, एस॰सी॰, *न्याय थियोरी ऑफ नॉलेज,* भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली।
2. दासगुप्ता, एस॰ एन॰, *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी,* कैम्ब्रिज पब्लिकेशन।
3. उद्योत्तकर न्यायावार्तिक।
4. मैक्समूलर, *सिक्स सिस्टम्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी,* सुनील गुप्ता (इंडिया) लि.।

****